इकाई 11 उभरती शक्तियाँ

संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 मध्य-स्तरीय शक्तियाँ उभरती शक्तियों के रूप में - कुछ परिभाषा सम्बंधी मुद्दे

11.3 मध्य-स्तरीय बोध के प्रमुख उपागम

- 11.3.1 स्थिति का महत्व
- 11.3.2 भूगोल की भूमिका
- 11.3.3 मानकी उपागम

11.4 व्यवहारवादी उपागम

- 11.4.1 मध्य-स्तरीय शक्ति के व्यवहार की सामान्य विशेषताएँ
- 11.4.2 मध्य-स्तरीय शक्ति पर निष्कर्षात्मक विचार

11.5 शीत युद्ध युग में मध्य-स्तरीय शक्तियाँ

11.6 मध्य-स्तरीय शक्ति के विचार की पुनर्स्थापना तथा उभरती शक्तियाँ

- 11.6.1 मध्य-स्तरीय शक्तियों की गतिविधियों का श्रेणीकरण
- 11.6.2 कुछ उभरती शक्तियों पर विचार

11.7 सारांश

11.8 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

शीत युद्धोत्तर काल की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील, कनाडा, चीन, भारत, जापान तथा दक्षिण अफ्रीका कुछ महत्वपूर्ण कारणों से उभरती शक्तियाँ कहे जा सकते हैं। विभिन्न अर्थों में इन सभी देशों को मध्य-स्तरीय शक्तियाँ कहा जा सकता है। यह देश, शीत युद्धोत्तर समय में नई प्रकार की तकनीक अपनाकर नवीन कूटनीतिक भूमिका निभा रहे हैं। साथ में यह भी सत्य है कि इन देशों को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

"उभरती शक्तियाँ" शब्द भ्रमोत्पादक हो सकता है। मध्य-स्तरीय शक्ति (middle power) निश्चय ही एक संदेहजनक तथा अस्पष्ट शब्द है। फिर भी इसका प्रयोग लक्ष्य सांकेतिक रूप में किया जाता है, तथा यह विदेश नीति की प्राथमिकताओं, कूटनीतिक पद्धति तथा उभरती अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में इन देशों की स्थिति पर अवश्य प्रकाश डालता है। अतः, इस इकाई में जिन उभरती शक्तियों का विवेचन किया है उनको मध्य-स्तरीय शक्ति के परिवेश में प्रस्तुत किया गया है।

11.2 मध्य-स्तरीय शक्तियाँ उभरती शक्तियों के रूप में - कुछ परिभाषा सम्बंधी मुद्दे

एक पृथक श्रेणी के रूप में मध्य-स्तरीय शक्ति का एक मानकी (normative) दोष है। अतः इस शब्द की स्पष्ट परिभाषा कर पाना संभव नहीं है। यह अवधारणा ढीली, या अस्पष्ट, है। यह स्वयं में एक समस्या भी है। अतः विद्वानों

ने मध्य-स्तरीय शक्ति की परिभाषा करने के लिए अलग-अलग मापदंड अपनाए हैं। साथ ही विभिन्न विद्वानों ने इन मापदंडों पर खरे उतरने वाले देशों की पृथक सूचियाँ प्रस्तुत की हैं।

यह समस्या इसलिए और भी गम्भीर हो जाती है क्योंकि सब मध्य-स्तरीय शक्तियाँ एक ही प्रकार से आचरण नहीं करती हैं। उनके संसाधन अलग-अलग हैं, उनकी कार्य शैलियाँ तथा उनकी विदेश नीतियों के संदर्भ भी एक दूसरे से भिन्न हैं। यह भी संभव है कि समय के साथ मध्य-स्तरीय शक्तियों के स्तर तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में उनकी भूमिका बदल सकती है। अतः हमको मध्य-स्तरीय शक्तियों के आचरण के किसी एक समान रूपता पर बल नहीं देना चाहिए।

फिर भी, विदेश नीतियों की प्राथमिकताओं तथा इन देशों के व्यवहार को समझने में यह ढाँचा आवश्यक है। यह उन देशों के लिए कहा जा सकता है जो स्वयं को मध्य-स्तरीय शक्ति के रूप में देखते हैं, तथा जिन्हें अन्य देश भी इसी रूप में देखना चाहते हैं। इस ढाँचे की प्रासंगिकता इस बात से सिद्ध होती है कि द्वितीय विश्व युद्ध के अंत से शीत युद्ध की समाप्ति तक हुए परिवर्तनों के बावजूद इनकी स्थिति स्थिर रही है।

11.3 मध्य-स्तरीय बोध के प्रमुख उपागम

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में, एक विषय के रूप में, उस श्रेणी के देशों का अध्ययन लम्बे समय से होता रहा है जिन्हें हम मध्य-स्तरीय शक्तियाँ कह रहे हैं। राजनय का संचालन करने वाले, तथा विषय के विद्वानों दोनों के द्वारा मध्य-स्तरीय शक्तियों की परिभाषा संरचना के परिवेश में की गई; तथा राज्य की समूची शक्ति, राज्यों की पदसोपनीयता में इनकी स्थिति, अथवा आदर्शवादी, एवं विदेश नीतियों पर मानवीय प्रभावों पर प्रकाश डाला गया

11.3.1 स्थिति का महत्व

अन्तर्राष्ट्रीय पदसोपनीयता (hierarchy) में मध्य-स्तरीय शक्तियों की स्थिति के आधार पर उनकी परिभाषा करना सबसे सामान्य बात है। इस विचार के अनुसार, मध्य-स्तरीय देश वे हैं जो कि बड़े और छोटे के मध्य मध्यम दर्जे के राज्य होते हैं - इनकी पहचान कुछ परिमाणात्मक (मात्रात्मक) विशेषताओं के आधार पर की जा सकती है जैसे कि उनका क्षेत्र, उनकी जनसंख्या, आकार, अर्थव्यवस्था की पेचीदगी तथा उसकी शक्ति, सैनिक सामर्थ्य तथा इसी प्रकार के अन्य तत्त्व। इस प्रथम उपागम में मध्य-स्तरीय देशों को मध्यम या मध्यवर्ती शक्तियों की श्रेणी में रखा जा सकता है। परन्तु, इस उपागम की अपनी कुछ समस्याएँ हैं। एक समस्या यह है कि शक्ति की मात्रा को किस प्रकार आँका जाए? फिर भी इस उपागम के माध्यम से उन राज्यों के अलग बीच की श्रेणी में रखा जा सकता है जो कि न तो बड़ी शक्तियाँ हैं, और न अत्यंत छोटी शक्ति वाले देश हैं।

11.3.2 भूगोल की भूमिका

कुछ विद्वानों का सुझाव है कि किस देश को मध्य शक्ति कहा जाए यह काफी हद तक उसकी भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करता है। यह दावा किया जाता है कि मध्य-स्तरीय शक्ति राज्य व्यवस्था के प्राकृतिक रूप से मध्य में स्थित होती है। भौगोलिक उपागम के दो उप-उपागम हैं। एक सुझाव यह है कि कोई देश जो किसी भौगोलिक क्षेत्र विशेष में शक्तिशाली है (न कि सम्पूर्ण संसार में) उसको मध्य-स्तरीय राज्य कह सकते हैं। इस विचार के अनुसार मध्य शक्तियाँ वास्तव में क्षेत्रीय शक्तियाँ होती हैं। दूसरे उप-उपागम के अनुसार, जो कि शीत युद्ध एवं द्विध्रुवीयता के समय में प्रचलित था, यह कहा जाता है कि उन देशों को मध्य शक्ति कहा जा सकता है जो कि विचारधारा के आधार पर बने दो बड़ी शक्तियों के गुटों में शामिल न होकर मध्यवर्ती स्थिति में थे। इस विचार के अनुसार, मध्य श्रेणी में भारत, यूगोस्लाविया, एवं स्वीडन जैसे तटस्थ या गुट-निरपेक्ष देश आते थे।

भौगोलिक स्थिति एवं आकार के आधार को भी क्षेत्रीय शक्तियों का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त किया जाता था। क्षेत्रीय शक्तियों की अपने क्षेत्र या उपक्षेत्र में प्रभावशाली भूमिका होती है, परन्तु आवश्यक नहीं कि वे मध्य-स्तरीय शक्तियाँ हों। वर्चस्व वाले, या प्रभावशाली देश होने के नाते यह देश अपने क्षेत्र की घटनाओं पर प्रत्यक्ष

एवं प्रबल प्रभाव डालते हैं। इस प्रकार वे अपनी मध्य-स्तरीय शक्ति की विशेषता दर्शाते हैं। परन्तु सभी क्षेत्रीय शक्तियों को मध्य-स्तरीय देश नहीं कहा जा सकता है।

11.3.3 मानकी उपागम

मध्य-स्तरीय शक्ति का एक तीसरा, तथा अधिक मान्य उपागम, **मानकी (Normative)** उपागम है। इसका विचार है कि मध्य शक्तियाँ उन देशों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान तथा अधिक नैतिक गुणवान होते हैं जो कि या तो उन से 'ऊपर' (बड़ी शक्तियाँ) हैं, अथवा उनके 'नीचे' (अति छोटी शक्तियाँ) हैं। उन्हें 'श्रेष्ठ अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक' भी माना जाता है। यह संज्ञा विशेषकर ऑस्ट्रेलिया तथा कनाडा जैसे मध्य देशों के लिए प्रयुक्त होती है, क्योंकि वे दावा करते हैं कि उनकी विदेश नीतियाँ "उदार अन्तर्राष्ट्रवाद" से प्रभावित एवं प्रेरित होती हैं।

मानकी विचार के अनुसार, मध्य-स्तरीय शक्तियाँ अधिक विश्वसनीय होती हैं, क्योंकि वे, बल प्रयोग के बिना, राजनयिक दबाव डाल सकती हैं। अतीत में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में उनका आचरण तथा उनकी भूमिका सराहनीय रही है। इस प्रकार उन्हें, बड़े राष्ट्रों सहित सबकी दृष्टि में अधिक विश्वसनीयता तथा आदर प्राप्त है। इसी कारण मध्य में स्थित देशों को, भूमंडलीय व्यवस्था के निर्धारण और निर्माण में, अधिक उत्तरदायी और गंभीर माना जाता है।

इस प्रकार का विचार जो मध्य शक्तियों के लिए कुछ मानक (norms) निर्धारित करता है, उसकी कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। वे हैं:

i) मध्य-शक्तियाँ प्रायः उच्च नैतिक मूल्यों की बात करती हैं, परन्तु उनका आचरण वास्तव में इन मूल्यों पर खरा नहीं उतरता। उदाहरण के लिए तुलना कीजिए: 1991 में ऑस्ट्रेलिया और कनाडा के द्वारा, कुवैत की संप्रभुता के पक्ष में व्यक्त उद्‌गार, और 1995 में जब इन्डोनेशिया ने पूर्वी तैमूर पर आक्रमण करके उसको अपने में मिला लिया तब यह दोनों देश चुप रहे - इंडोनेशिया की कोई आलोचना नहीं की।

   उनको 'शक्ति न होने का गर्व' हो सकता है, परन्तु वे फिर भी कठोर धारणा व्यक्त करते हैं, जो कि स्वच्छ अन्तर्राज्यीय सम्बंधों के हित में नहीं है।

ii) मानकी उपागम की दूसरी कठिनाई यह है कि यह अनेक राज्यों को वर्जित रखती है, यद्यपि इन राज्यों का मध्य-स्तरीय शक्ति होने का दावा कितना ही न्यायोचित्त क्यों न हो। उनके द्वारा उद्‌घोषित आदर्शवाद तथा नैतिक मूल्य मात्र उन्हें मध्य शक्ति की श्रेणी में शामिल करने का मानकीय आधार नहीं हो सकता है।

iii) यह भी उल्लेखनीय है कि स्वयं को "श्रेष्ठ अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक" कहने वाले देश प्रायः उत्तर के विकसित मध्यम आकार वाले राज्य हैं। इनमें प्रमुख हैं कनाडा, नीदरलैंड्स, नॉर्वे तथा स्वीडन। वास्तव में राज्यों को, जैसे कि अर्जेन्टीना भारत, ब्राज़ील, मिस्र, हंगरी, इन्डोनेशिया, नाईजीरिया तथा पोलैण्ड को इन राज्यों में रखा जाना चाहिए।

11.4 व्यवहारवादी उपागम

यह तर्क दिया जाता है कि मध्य शक्तियों की राजनयिक गतिविधियों का सार इस बात पर आधारित नहीं है कि इन देशों के समूहों को क्या करना चाहिए, बल्कि यह कि उनका राजनयिक (कूटनीतिक) व्यवहार क्या है, या समान रूप से क्या होना चाहिए। यह चौथा उपागम, अर्थात् व्यवहारवादी उपागम, मध्य-स्तरीय शक्तियों के व्यवहार पर अधिक ध्यान देता है। इस उपागम के अनुसार, मध्य शक्तियाँ अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के बहुमुखी (बहुपक्षीय) समाधान पर बल देती हैं। वे समझौते की राजनीति करती हैं, तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिए आम सहमति बनाने का प्रयास करती हैं। वे "श्रेष्ठ (अच्छे) अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक" के मूल्यों पर आचरण करते हुए अपने राजनय का संचालन करते हैं। इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि वे इन भूमिकाओं को निभाने के

लिए अपनी तकनीकी और उद्यमी क्षमता में भरोसा रखते हैं। कनाडा के विख्यात राजनयिक तथा विद्वान होम्स (W.H. Holmes) ने इसको मध्य शक्तियों की भूमिका सम्पादन के लिए 'कार्यात्मक संसाधन' शब्द का प्रयोग किया।

11.4.1 मध्य-स्तरीय शक्ति के व्यवहार की सामान्य विशेषताएँ

इस विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मध्य शक्ति की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। यह जानना भी आवश्यक है कि स्वाभाविक तौर पर मध्य शक्तियों का व्यवहार सदा एक जैसा नहीं होता। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में परिवर्तन के साथ, इन देशों के व्यवहार में भी नाटकीय परिवर्तन हुए हैं। मध्य शक्तियाँ कौन-कौन हैं इस विषय में भी कोई स्थायित्व नहीं हैं। विभिन्न देश मध्य शक्तियों की विशेषताओं को प्राप्त करते रहते या खोते रहते हैं।

फिर भी उनकी विदेश नीतियों तथा उनके अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार सम्बंधित आचरण में कुछ स्थायी विशेषता अवश्य है। अतः हम इसका विश्लेषण करेंगे कि मध्य शक्तियाँ कौन सी हैं? वे किस प्रकार व्यवहार करती हैं, तथा क्यों वैसा व्यवहार करती हैं?

1) मध्य शक्तियाँ, या मध्य-स्तरीय शक्तियाँ (middle powers) इसलिए 'मध्य' नहीं कहलातीं क्योंकि उनके पास बड़ी शक्तियों जितनी सैनिक क्षमता या आर्थिक शक्ति नहीं होती। वास्तव में, आकार की दृष्टि से, सैनिक क्षमता या आर्थिक विकास के आधार पर मध्य शक्ति और बड़ी शक्ति में अधिक अंतर नहीं भी हो सकता है। कुछ देश स्वयं को मध्य शक्ति मानकर, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में इस प्रकार व्यवहार करते हैं कि वे अलग, अधिक स्वतंत्र, प्रतीत हों। वे ऐसा इसलिए करते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों में उनकी मौजूदगी पर ध्यान दिया जाए, तथा इससे भी अधिक यह कि वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बड़ी शक्तियों के स्वैच्छिक आचरण पर नहीं छोड़ना चाहतीं।

2) मध्य शक्तियाँ बहुपक्षात्मकवादी होती हैं। मध्य शक्ति कूटनीति के मूल में विदेश-नीति की एक विशेष प्रकार की मान्यता है जिसका सम्बंध बहुपक्षीय संस्थाओं तथा सहयोग पर आधारित विश्व व्यवस्था से है। मध्य शक्तियाँ अकेले कार्य करने में स्वयं को प्रभावी नहीं मानती हैं। बहुपक्षीय संस्थाओं (multilateral institutions) के द्वारा कार्य करने में, या राज्यों के एक छोटे समूह के रूप में कार्य करने में, यह देश स्वयं को इस योग्य समझते हैं कि उनके कार्यों का क्रमबद्ध प्रभाव पड़ेगा। इस (मध्य शक्ति) शब्द में, सावधानी, शर्त के साथ बात करने (equivocalness), तथा मुद्दों विशेष से सम्बंधित सक्रियता, नेतृत्त्व तक, का बोध होता है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धता के साथ जुड़े रहते हुए, यह देश राज्यकला के लचीले रूप में विश्वास रखते हैं। यह कहा जा सकता है कि मध्य शक्तियों की अपनी विशेष कार्य शैली है। उनकी शक्ति का आधार दूसरों के साथ समझौता करने, आम सहमति तथा स्वेच्छा से कार्य करने में हैं। वे बहुपक्षात्मकवादी तथा 'श्रेष्ठ अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक' हैं; चाहे सदैव ऐसा नहीं होता। केवल मानक-आधारित बहुपक्षीय अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में, मध्य शक्तियाँ अपनी समुचित भूमिका निभा सकती हैं, तथा बड़ी शक्तियों की स्वेच्छाचारिता और एकपक्षीय प्रवृत्तियों पर अंकुश रख सकती हैं। इसका एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि मध्य शक्तियाँ इस धारणा को अस्वीकार करती हैं कि मात्र 'शक्ति' ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों का आधार होती हैं।

3) मध्य शक्तियाँ 'कार्यात्मक' शक्तियाँ होती हैं। कार्यात्मकता के सिद्धान्त का अर्थ है कि कुछ निश्चित विषयों में मध्य शक्ति वाले देशों को अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्राप्त होता है। उनके पास कुछ चुने हुए क्षेत्रों में पर्याप्त संसाधन तथा कौशल उपलब्ध हैं, जहाँ वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की कार्यविधि को प्रभावित कर सकते हैं। निश्चय ही यह संसाधन तथा विशेष कौशल सब मध्य शक्तियों के पास एक समान नहीं हैं। वे संसाधन तथा कौशल, अन्तर्राष्ट्रीय शांति स्थापन संक्रिया, तथा मध्यस्थता जैसे विषयों में विशेषकर उनके पास उपलब्ध हैं।

अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि, उनके पास जो विशेष सुविधाएँ उपलब्ध हैं, उनके कारण मध्य शक्तियाँ अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में विशेष योगदान देती हैं जो कि बड़ी शक्तियाँ भी नहीं दे सकती हैं। कार्यात्मक मध्य (शक्तियाँ) देश, बड़ी शक्तियों के द्वारा प्रयोग में लाई गई एकपक्षीय प्रवृत्तियों, तथा बल प्रयोग पर आधारित

आचरण पर अंकुश रख सकते हैं। उनके मध्य शक्ति स्तर के कारण यह देश एक विशेष प्रकार की कूटनीति पर चल सकते हैं जिसे 'आला राजनय' (niche diplomacy) कहा जाता है। वे अन्तर्राष्ट्रीय गठबंधन निर्माण में सक्षम हैं, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में उनकी विशेष पहचान और साख है। चूँकि यह देश अपने सहयोगियों के हितों का, अपने हित में, बलिदान नहीं करते हैं, इसलिए उन्हें अच्छे या स्वीकार्य नेता माना जा सकता है। वे 'आला राजनय' (niche diplomacy) के अनुसार इसलिए कार्य कर सकते हैं क्योंकि उनकी साख कमजोर और शक्तिशाली देशों दोनों में एक समान हैं। कभी-कभी तो बड़ी शक्तियाँ भी मध्य-स्तरीय देशों पर, उनकी साख और मध्यस्थता करने के कौशल के कारण, निर्भर रहती हैं।

सैद्धान्तिक रूप से तो छोटे देशों (छोटी शक्तियों) को भी विशेष मुद्दों पर अपेक्षाकृत अधिक लाभ की स्थिति प्राप्त हो सकती है। परन्तु बड़ी शक्तियों के वर्चस्ववाली अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में मध्य-स्तरीय देश स्वयं अपने बल पर विशेष भूमिका निर्धारित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, अपनी वचनबद्धता निभाने के लिए वे पर्याप्त साधन जुटा सकते हैं। मध्य देशों को, छोटे देशों की तरह, प्रतिबद्धता पूरी करने की क्षमता में कमी का सामना नहीं करना पड़ता। संक्षेप में मध्य शक्ति वाले देश अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विधि के शासन, वार्ता, तथा आमसहमति निर्माण की क्षमता विशाल और बहुमुखी निभा सकते हैं, जिसे 'Grotian perspective' की भूमिका कहा जाता है।

11.4.2 मध्य-स्तरीय शक्ति पर निष्कर्षात्मक विचार

अनेक विद्वानों का कहना है कि कुछ ऐसी अन्य भूमिकाएँ भी हैं जिनका सम्पादन सभी मध्य शक्ति वाले देश करते हैं। वे हैं: क्षेत्रीय, अथवा उपक्षेत्रीय नेतृत्त्व की भूमिका, कार्यात्मक नेतृत्त्व, 'प्रथम अनुयायी' तथा "बाड़े (किनारे) पर बैठने वालों" की नकारात्मक भूमिका, तथा "अच्छे अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक" की भूमिकाएँ। अन्य विद्वानों ने मध्य शक्तियों की पहचान इस प्रकार की है कि वे शक्ति-संघर्ष में प्रमुख (बड़े) देशों से दूरी बनाए रखने की सामर्थ्य रखते हैं। वे विदेश नीति के विषय में प्रमुख शक्तियों से काफी स्वायत्तता-प्राप्त होते हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय यथास्थिति (status quo) तथा स्थायित्व का समर्थन करते हैं। तथा वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में धीरे-धीरे सुधारों के प्रति वचनबद्ध होते हैं।

होम्स की शब्दावली 'मध्य शक्ति - सम्पन्नता' का प्रयोग करें तो यह आचरण, या व्यवहार, के कुछ नियमों का संग्रह है। इससे उत्तम परिभाषा यह हो सकती है कि यह ऐसी **प्रक्रिया** है जो सदा उभरते संकटों का प्रत्युत्तर देती है। इस अर्थ में मध्य-शक्तियाँ प्रत्येक युग में तथा सभी प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं में पाई गई हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि मध्य शक्ति की अवधारणा पकड़ (समझ) में न आने वाली रही है। होम्स ने यह भी कहा कि यह शब्द अस्पष्ट तथा रहस्यमय ही बना रहे तो अच्छा होगा। इसके उपयुक्त कारण भी हैं। अस्पष्टता के कारण यह देश समय के अनुसार अपनी भूमिका में परिवर्तन कर सकते हैं, तथा अपने द्वारा निर्धारित राजनीतिक उद्देश्यों तथा कूटनीतिक उपायों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में प्रोत्साहित कर सकते हैं

हमको यह स्वीकार करना होगा कि मध्यम शक्तियाँ विभिन्न प्रकार से आचरण करती हैं। साथ ही जिसको सामान्यतया मध्यम राज्यों की भूमिका माना जाता है उनका सम्पादन सभी प्रकार के राज्य करते हैं - चाहे वे महाशक्तियाँ हों, या बड़ी शक्तियाँ, या उच्चतर-मध्यम शक्तियाँ, या फिर निम्नतर-मध्य शक्तियाँ, या फिर चाहे किसी भी रूप में अन्तर्राष्ट्रीय पदसोपनीयता का वर्णन किया जाए। फिर भी, इसमें कोई संदेह नहीं कि मध्य शक्ति वाले देश अनेक ऐसे कार्य नहीं कर सकते हैं जो बड़ी शक्तियों (big powers) के कार्य हैं; उसी प्रकार वे कुछ ऐसे कार्य कर सकते हैं जो कि छोटी (कम) शक्ति वाले देश नहीं कर सकते।

यह कहा जाता है कि मध्य शक्ति सम्पन्नता एक ऐसी भूमिका है जिसको एक अभिकर्ता की तलाश है; तथा अनेकों राज्यों ने अलग-अलग समय पर तथा अलग-अलग परिस्थितियों में पृथक भूमिकाएँ निभाई हैं। अन्त में, यह कहा जा सकता है मध्यम देशों के पास दैत्य के जैसी शक्ति बेशक न सही, फिर भी उनके पास नर्तक का कौशल होता है; तथा चाहे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का कुछ भी रूप हो वे अपनी भूमिका अवश्य निभाते रहेंगे।

11.5 शीत युद्ध युग में मध्य-स्तरीय शक्तियाँ

द्वितीय विश्व युद्ध की 1945 में समाप्ति के पश्चात् अधिकांश मध्य-स्तरीय शक्ति वाले देशों ने, अमेरिका के वर्चस्व में स्थापित, विश्व व्यवस्था का समर्थन किया। अधिकांश मध्य-शक्ति देश, उस समय, गुट-निरपेक्ष न होकर, अमेरिका के साथ संलग्न थे। वे अमेरिका द्वारा स्थापित सुरक्षा व्यवस्था के अधीन थे। वे उत्तर अटलांटिक संधि संगठन जैसी संस्थाओं के सक्रिय सदस्य भी बने। केवल भारत और चीन ऐसी मध्य शक्तियाँ थीं जिन्होंने अलग मार्ग अपनाया। भारत की गुट-निरपेक्षता की नीति ने बड़ी, या महाशक्तियों के वर्चस्व की नीति और गुटों की राजनीति को ठोस चुनौती दी।

मध्य-शक्ति देश चाहे वे गुट-निरपेक्ष थे, अथवा किसी गुट में थे, सभी ने संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था का समर्थन किया। एक सशक्त संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था मात्र ही, यह सुनिश्चित कर सकती थी कि अन्तर्राष्ट्रीय मानदंडों के अनुसार व्यवहार किया जाए, बड़ी शक्तियों के प्रभुत्त्व पर अंकुश लगाया जाए, तथा सहयोग, आम सहमति तथा वार्ता के मानदंडों को प्रोत्साहित किया जाए। अन्य शब्दों में, मध्य-शक्ति देश सही अर्थों में बहुपक्षीय थे। वे केवल संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था के माध्यम से ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की कार्यविधि को प्रभावित कर सकते थे। भारत की विदेश नीति भी, गुट-निरपेक्ष तथा अन्य देशों के सहयोग से, संयुक्त राष्ट्र को सशक्त बनाने की रही। इन देशों में केवल साम्यवादी चीन ने अलग अपना मार्ग अपनाया। उसका मूल कारण तो यह था कि उसे लम्बे समय तक संयुक्त राष्ट्र से बाहर रखा गया, क्योंकि ताईवान की सदस्यता समाप्त नहीं की गई। उसके अतिरिक्त चीन सदा से बड़ी शक्ति के रूप में उभरने और मान्यता प्राप्त करने का प्रयास करता रहा। जहाँ पाश्चात्य देश चीन को अलग-थलग रखना चाहते थे, वहीं चीन की विदेश नीति उनकी अवहेलना करने की थी।

शीत युद्ध तथा द्विध्रुवीयता से उत्पन्न संघर्ष ने मध्य शक्तियों की कूटनीति पर संयम रखने की प्रेरणा दी। उस समय अन्तर्राष्ट्रीय कार्यसूची पर भू-राजनीति सम्बंधित सुरक्षा मुद्दे छाए हुए थे। अतः मध्य शक्तियों की क्षमता सीमित थी। ऑस्ट्रेलिया और कनाडा जैसे देश जो पाश्चात्य संधि व्यवस्था के सदस्य थे, वे तो अमेरिका के 'प्रथम अनुयायी' (first followers) रहे; जापान जैसे अन्य देश जो संधियों के उत्तरदायित्व से बंधे हुए थे, वे स्वयं स्वतंत्र रूप से कार्य करने में संकोच कर रहे थे। केवल भारत जैसे गुट-निरपेक्ष देशों ने ही स्वतंत्र नीतियाँ अपनाईं। परन्तु, गुट-निरपेक्षता में आलंकारिक भाषा का प्रयोग अधिक था। उसकी प्रमुख भूमिका गुटों से पृथक रहने की राजनीति के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय जनमत तैयार करने की थी। मध्य शक्तियों ने थोड़ा बहुत प्रयास विश्व में तनाव कम करवाने के लिए अवश्य किया। साथ ही शांति स्थापन संक्रिया और अस्त्र नियंत्रण के माध्यम से एक और विश्व युद्ध छिड़ने से रोकने का कार्य भी किया।

कुछ अवसरों पर मध्य-शक्ति देशों ने शीत युद्धरत् गुटों के विवादों में मध्यस्थता की भूमिका निभाने का प्रयास भी किया। विशेषकर नेहरू के नेतृत्त्व में भारत ने, तथा स्वीडन ने, कई अवसरों पर गुटों के मध्य इस प्रकार की राजनयिक गतिविधि में भागीदारी की। उधर ऑस्ट्रेलिया और कनाडा जैसे मध्य-शक्ति वाले देशों ने गुट के भीतरी सम्बंधों पर अधिक बल दिया। वे गुट के सदस्यों में उत्पन्न तनावों को कम करवाने का प्रयास करते रहे। उदाहरण के लिए, 1956 में स्वेज़ संकट के समय, एक ओर अमेरिका और दूसरी ओर फ्रांस एवं ब्रिटेन के मध्य उभरे तनाव को समाप्त करवाने में कनाडा ने प्रमुख भूमिका निभाई। उसी प्रकार, कोरिया तथा वियतनाम युद्धों के समय भी कनाडा और ऑस्ट्रेलिया ने संयम बरतने का प्रयास किया। उन्होंने अमेरिका की पृथकतावाद की प्रवृत्ति को भी रोकने की चेष्टा की। मध्य-शक्ति देशों ने क्षेत्रीय संघर्ष स्थितियों में भी संघर्ष समाधान और मध्यस्थता के प्रयास किए। इस संदर्भ में वे प्रायः शांति निर्वहण संक्रिया (peacekeeping operations) में व्यस्त रहे।

परन्तु, इस सब विवेचन का यह अर्थ भी नहीं है कि मध्य-शक्ति देशों की भूमिका केवल सीमित थी, या यह कि उनका अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। कुछ मध्य-शक्ति देश जो अमरीकी गुट में थे उन्होंने कई अवसरों पर संयुक्त राज्य अमेरिका से अपनी बात मनवाने के प्रयास किए। परन्तु इस प्रकार की घटनाएँ यदा कदा ही हुईं। क्षेत्रीय संघर्ष समाप्त करवाने में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही। गुट-निरपेक्ष मध्य-शक्ति देशों ने संयुक्त राष्ट्र महासभा की कार्यविधि को सशक्त बनाने, तथा सुरक्षा परिषद् को बड़ी शक्तियों के प्रभाव से मुक्त करवाने के प्रयास भी किए। यह विश्व संस्था के लोकतंत्रीकरण करवाने की दिशा में प्रशंसनीय कदम थे।

11.6 मध्य-स्तरीय-शक्ति के विचार की पुनर्स्थापना तथा उभरती शक्तियाँ

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंध के विद्वानों और विशेषज्ञों का लगभग सर्वसम्मत मत यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में अस्थिरता तथा परिवर्तन की स्थिति में, मध्य-शक्ति देश अधिक सक्रिय हो जाते हैं। वे अपने संसाधनों और कौशल का प्रयोग करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को नया रूप देने और सुव्यवस्थित का कार्य करते हैं ताकि उस व्यवस्था का अधिक लोकतन्त्रीकरण हो सके। वे अपने मिलीजुली व्यवस्था तथा आम सहमति निर्माण के मूल्यों तथा विधि के शासन को प्रभावी बना सकते हैं। ऐसा विशेषकर उत्तर-1945 वर्षों के लिए कहा जा सकता है। ऐसा ही 1970 के दशक के मध्य के तनाव शैथिल्य के प्रारंभिक वर्षों और शीत युद्धोत्तर युग के लिए भी सत्य माना जाता है।

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में अनेक दूरगामी राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन हो रहे हैं। बदलती अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में मध्य-शक्ति के विचार की 'पुनर्स्थापना' की जा सकती है ताकि उभरती शक्तियों के महत्व और उनकी भूमिका को अधिक अच्छी तरह समझा जा सके।

1) नेतृत्त्व की परिभाषा निरंतर परिवर्तनशील है। सन् 1945 के पश्चात् प्रचलित संरचनात्मकता पर निर्धारित परिभाषा के विपरीत, आर्थिक भूमंडलीकरण तथा पारस्परिक निर्भरता ने नेतृत्व की परिभाषा को अधिक तकनीकी और उद्यमी रूप प्रदान किया है। नेतृत्त्व का आधार शक्ति संरचना (अर्थात् वर्चस्व) न होकर, अब विश्व राजनीति की व्याख्या में 'एजेंटों (agents) की भूमिका' को अधिक मान्यता दी जा रही है।

2) अनिश्चितता के काल में, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के प्रश्न का विश्लेषण करते हुए, इस बात को स्वीकार किया जा रहा है कि सहयोग-निर्माण की प्रक्रिया में कम शक्तिशाली देश भी प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं। जहाँ भी पारस्परिक निर्भरता की वास्तविकता की पृष्ठभूमि में शक्ति के सिद्धान्त को चुनौती दी जाती है, वहीं अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में मध्य-शक्ति देशों को नए अवसर प्राप्त हो रहे हैं।

3) विकसित हो रही विश्व व्यवस्था में अभिकर्ताओं (actors) - राज्य अभिकर्ता और ग़ैर-राज्य अभिकर्ता (non-state actors) - दोनों की संख्या में वृद्धि हुई है। यह महत्वपूर्ण है कि यह अभिकर्ता आंतरिक (घरेलू) और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था दोनों में कार्य करते हैं, तथा वे ग़ैर-सरंचनात्मक नेतृत्त्व प्रदान करने में सक्षम हैं।

4) जिन मुद्दों पर कार्य करने के लिए ग़ैर-सरंचनात्मक नेतृत्त्व की आवश्यकता है उनकी संख्या में भी वृद्धि हुई है। आज अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के सामने जो चुनौतियाँ हैं वे ऐसी हैं कि केवल बड़ी शक्तियों के असीमित प्रभाव से उनका मुकाबला नहीं किया जा सकता। यह कहा जाता है कि "कौशल की कला" (games of skill) का स्थान "इच्छा की परीक्षा" ने ले लिया है। इसका अर्थ यह हुआ कि यद्यपि बड़ी शक्तियों का संरचनात्मक नेतृत्व अभी भी पहल का महत्व स्रोत है, सुधार और परिवर्तन की प्रक्रिया की व्यावहारिक रूप देने में अन्य श्रेणियों का नेतृत्व भी कम महत्वपूर्ण नहीं है - विशेषकर जहाँ पर सहयोग की आवश्यकता अधिक है।

5) अतीत के प्रतिमानों से भिन्न रूपों में, गुणवत्ता सम्पन्न मध्य-शक्तियाँ इस प्रकार की भूमिका का उत्तम निर्वहन कर सकती हैं। इस दावे का आधार है अन्तर्राष्ट्रीय कार्यसूची की बदलती प्रकृति। पर्यावरण के मुद्दों और आर्थिक सहयोग की अनिवार्यता में संरचनात्मक नेतृत्त्व सरल भी नहीं है। दूसरे शब्दों में, वर्चस्व-अधीनता सम्बंधों के आधार पर संरचनात्मक शक्ति में गिरावट आई है। उसका स्थान ऐसा नेतृत्त्व ले रहा है जो सशक्त सिद्धान्त के आधार पर अनुयायियों को आकर्षित कर सकें।

एक बहु ध्रुवीय विश्व के उभरने की सम्भावना काफी अस्पष्ट है। हम ऐसी पूर्वमान्यता कर सकते हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका केन्द्रीय भूमिका निभाता रहेगा, परन्तु संरचना के अन्य शक्ति केन्द्रों, जापान तथा यूरोपीय संघ इत्यादि के प्रभाव में भी वृद्धि होगी। संरचनात्मक शक्ति के इन केन्द्रों के साथ-साथ, कुछ ग़ैर-सरंचनात्मक शक्तियां और अभिकर्ता भी होंगे - वे मध्य-शक्ति देश हो सकते हैं या फिर ग़ैर-राज्य अभिकर्ता हो सकते हैं। वे भी नेतृत्त्व का स्रोत हो सकते हैं - ऐसा नेतृत्त्व जो कि बल प्रयोग पर नहीं, समझाने-बुझाने की प्रक्रिया पर आधारित होगा।

अब जबकि नेताओं और अनुयायियों दोनों की प्रकृति में परिवर्तन आ रहा है तब मध्य-शक्ति के व्यवहार का सैद्धान्तिक पुनर्विचार और विश्लेषण आवश्यक लगता है। दूसरे शब्दों में आज की परिवर्तित अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में, मध्य-शक्ति के विचार को पुनर्स्थापित करने की नितांत आवश्यकता है। संरचनात्मक नेतृत्त्व में जो कमी या रिक्तता आई है उसकी मध्य शक्तियाँ भरपाई कर सकती हैं। यही, निश्चित रूप से एक कारण है कि वे उभरती शक्तियों का रूप ग्रहण कर रही हैं। इसके अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय संघ तथा जापान की अर्थव्यवस्थाओं की आर्थिक भूमंडलीकरण की धुन के कारण अधिक उन्मुक्ति हुई है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में पारस्परिक निर्भरता कितनी गहरी हो गई है। इस बढ़ती निर्भरता का प्रभाव मध्य शक्तियाँ और भी अधिक अनुभव करती हैं। दूसरे शब्दो में, मध्य-शक्ति देशों के सामने नए अवसर भी हैं, और नई रुकावटें भी जिनको ध्यान में रखकर वे अपनी भूमिका में आवश्यक परिवर्तन कर सकती हैं।

यह सत्य है कि 1980 के दशक से मध्य-शक्ति के विचार की पुनः संस्थापना हो रही है। नई परिस्थितियों में स्वयं को ढाल कर, मध्य शक्तियाँ ने केवल तीव्र गति और लचीलेपन से नई स्थिति का प्रत्युत्तर दे रही हैं, परन्तु वे नीतियों के सम्बंध में भी अलग प्रकार की पहल कर रहीं हैं। पारस्परिक-निर्भरता (interdependence) ने नई चुनौतियाँ पेश की हैं, तथा इन देशों को अधिक भेद्य बनाया है, तथा साथ ही उन्हें नए अवसर भी प्रदान किए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनको राजनय (diplomacy) के संदर्भ में अधिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई है। अनेक मध्य-शक्ति देश अपनी बात बलपूर्वक कहने के लिए नए मार्ग (उपाय) तलाश कर रहे हैं। यह संभावित है कि नई परिस्थितियों की माँग के सामने झुककर वे नए रचनात्मक कार्य करें। दो अन्य तत्त्व भी हैं जिनके कारण, मध्य-शक्ति देश, अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर अधिक सक्रिय और पहल करने वाले उपागम अपनाने के लिए इच्छुक और तैयार हैं। प्रथम तो है विश्वव्यापी कार्यसूची में सैनिक-सुरक्षा के उच्च नीतिगत मुद्दों से हटकर आर्थिक सहयोग और सामाजिक या पर्यावरण सम्बंधी मुद्दों की द्वितीय या तृतीय कार्य सूची की ओर ध्यान दे रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय कार्यसूची में परिवर्तित परिवेश ने 'राष्ट्रीय हित' और 'राष्ट्रीय सुरक्षा' की परिभाषाएँ भी बदल डाली हैं। एक दूसरा तत्त्व जिसने मध्य-शक्तियों की संक्रियता में वृद्धि की है वह हैं आन्तरिक राजनीति का विदेश नीति पर निरंतर बढ़ता प्रभाव। "द्वितीय" और "तृतीय" कार्यसूचियों के मुद्दों के वर्चस्व ने सामाजिक तत्त्वों को उन घरेलू मुद्दों में अधिक उलझा दिया है जिनकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया होती है, तथा उन मुद्दों में भी जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति के हैं, परन्तु जिनकी छाया राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी पड़ती है। अतः मध्य-शक्तियों के लिए विदेश नीति 'दो-स्तरीय क्रीड़ा' हो गई है। इसका एक विशेष उदाहरण यह है कि अनेक औद्योगीकृत मध्य देशों, जैसे कनाडा और ऑस्ट्रेलिया ने अपने कपड़ा उद्योग पर संरक्षात्मक नीतियाँ लागू कर दी हैं; या फिर भारत ने विश्व व्यापार संगठन के नियमों से बचने के लिए कृषि क्षेत्र की सुरक्षा के प्रयास किए हैं। संक्षेप में, 1990 के दशक में मध्य-शक्ति देशों का आचरण बहुमुखी हुआ। अब द्वितीय और तृतीय कार्यसूचियाँ पर मध्य शक्तियों की शक्ति पारम्परिक अवधारणा पर आधारित नहीं रह सकती हैं। न जापान जैसी उत्तम आर्थिक क्षमता पर ही यह आधारित हो सकती हैं। मध्य-शक्ति देशों के नेतृत्त्व, और पहल करने की क्षमता को शक्ति के ग़ैर-संरचनात्मक आकार पर निर्भर रहना होगा। उन्हें दूरदर्शी एवं प्रभावी ढ़ग से कूटनीतिक कौशल भी अपनाना होगा। अभूतपूर्व रूप से, आज मध्य-शक्ति देश उलझी हुई राजनीतिक एवं आर्थिक गतिविधियों में भाग ले रहे हैं, ताकि नए क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों का निर्माण हो सके, जिनमें आर्थिक सहयोग और राजनीतिक सुरक्षा के दोनों पक्ष शामिल हों।

11.6.1 मध्य-स्तरीय शक्तियों की गतिविधियों का श्रेणीकरण

मध्य-शक्तियों के उभरते प्रतिमान को प्रकट करने के लिए जाने-माने विद्वानों - ऐन्ड्रयू एफ़. कूपर, रिचर्ड ए. हिग्गॅट तथा किम रिचर्ड नोसल - ने क्रियाओं का वर्गीकरण (श्रेणीकरण) करने का प्रयास किया है। मध्य-शक्ति का, कूटनीतिक उपागम उद्यमी क्षमता और तकनीकी योग्यता पर बल देता है। केवल यहीं नहीं, विशिष्ट कार्यसूचियों (जिनका सम्बंध मुद्दे विशेष से हो) पर आम सहमति बनाने और सहयोग की खोज के लिए राजनय (कूटनीति) का उपयोग किया जाता है। इसमें महत्वपूर्ण सांसारिक (लौकिक) तत्त्व अवश्य होता है। इसके फलस्वरूप मध्य-शक्ति व्यवहार का विश्लेषण, बदलते रहते हुए भी, इस प्रकार किया जा सकता है।

1) **पथप्रदर्शक (Catalyst):** राजनयिक प्रयासों के संदर्भ में उद्यमी मध्य-शक्तियाँ पथ प्रदर्शक का कार्य कर सकती हैं। वे बुद्धिजीवी तथा राजनीतिक शक्ति उपलब्ध करवा कर ऐसी पहल कर सकते हैं ताकि वे अनुयायियों को संगठित करने में नेतृत्त्व प्रदान कर सकें।

2) **सुगमकर्ता (Facilitator):** प्रारंभिक और मध्यम चरण में कार्यसूची के निर्धारण पर ध्यान केन्द्रित होता है। यह सुगमकर्ता एक ऐसा कार्य कर करने का मार्ग आसान बना देता है जिस पर संगठनात्मक, सहयोगी एवं मिलीजुली (गठबंधन की) गतिविधियाँ चलाई जा सकें। मध्य-शक्ति के नेतृत्त्व की मुख्य तकनीक किसी मुद्दे विशेष पर गठबंधन तैयार करने की होती है, अन्यथा उनके पास बड़े देशों की संरचनात्मक शक्ति नहीं होती हैं। गठबंधन शक्ति संचय का साधन होता है। इस कार्य के लिए नियोजन करना, प्रारंभिक बैठकें बुलाना औरं उनकी मेहमानबाज़ी करना, प्राथमिकताएँ निर्धारित करना तथा आलंकारिक भाषा में घोषणाएँ (declarations) और घोषणापत्र (manifesto) तैयार करना, यह सब कार्य करने होते हैं।

3) **प्रबंधक (Manager):** तीसरा चरण एक प्रबंधक का होता है, जिसमें संस्था-निर्माण पर काफी बल दिया जाता है। व्यापक अर्थ में, संस्था निर्माण में औपचारिक संगठनों तथा सत्ताओं का निर्माण करना मात्र शामिल नहीं होता है, परन्तु मानदंड तथा परिपाटियों की स्थापना भी होता है। संस्था-निर्माण का मूल कार्य, विस्तृत कार्यक्रम तैयार करना जो कि श्रम के विभाजन की व्यवस्था कर सके, गतिविधियों के संकलन का विकास, तथा संभवतः एक सचिवालय या नौकरशाही की स्थापना, होता है। इस प्रबंधन चरण में विश्वास स्थापना के उपाय तथा विवादों के समाधान की ऐसी सुविधाएँ जुटाना शामिल हैं जो कि विश्वसनीयता तथा भरोसे पर निर्मित हों। विश्वास निर्माण (या विश्वास स्थापना) में गलतफहमी तथा मिथ्याधारणा दूर करना भी प्रमुख कार्य है, जो कि सम्पर्क प्रयासों, विचरण राजनय (shuttle diplomacy) तथा वैकल्पिक एवं अनौपचारिक मंचों के उपयोग, पारदर्शिता की स्थापना, तथा प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के अन्य उपायों के द्वारा संभव हो सकते हैं। इस कार्यक्रम को समर्थन देने के लिए जो पहल की गई है उसकी प्रासंगिकता या महत्व का प्रदर्शन करके, तथा अधिक व्यावहारिक - एवं अराजनीतिक - प्रस्तावों और कार्यक्रमों के द्वारा अधिक प्रभावी रूप दिया जा सकता है।

इन तीनों भूमिकाओं की सफलता इस पर निर्भर करती है कि आँकड़े एकत्र किए जाएँ जिसके लिए प्रायः विशेषज्ञ कौशल की आवश्यकता होती है, जो कि मध्य शक्तियों के पास पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। इसमें कोई संदेह नहीं कि तक़नीकी (विशेषज्ञ) कौशल बड़ी शक्तियों के पास काफ़ी उपलब्ध है, परन्तु उनके पास, मध्य शक्तियों की अपेक्षा, कहीं अधिक कार्यक्रम सम्पन्न करने होते हैं, जबकि मध्य शक्तियाँ किसी एक विषय पर ही अपना अधिकांश समय, अपनी शक्ति और अपने संसाधन व्यय कर देती हैं। वास्तव में इसी को 'भाले की कूटनीति' (miche diplomacy) कहते हैं।

यह सावधानी रखना आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों में पहल करने के इस रूप की विशालता का हम बढ़ा-चढ़ाकर अनुमान न लगाएँ। मुद्दों के आधार पर, संस्थागत क्षेत्र के अनुसार, तथा अन्य स्रोतों से की गई पहल को ग्रहण करके मध्य-शक्तियाँ अपने प्रभाव का विस्तार कर सकती हैं।

अंत में, हमको यह स्मरण रखना होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंध आज भी सामान्यतया संरचनात्मक शक्ति पर आधारित हैं, तथा कार्यसूची तैयार करने तथा नीति समन्वय करने के कार्य में मध्य शक्तियों का प्रभाव संरचनात्मक तत्वों से बाध्य (सीमित) है।

11.6.2 कुछ उभरती शक्तियों पर विचार

अधिकांश मध्य-शक्ति वाले देशों को, जिनका इस इकाई में उल्लेख है, उनको उभरती शक्तियों के रूप में देखा जा रहा है। उनको इसलिए उभरती शक्तियाँ कहा जाता है क्योंकि वे विभिन्न महत्त्वपूर्ण मुद्दों को उठाने की सामर्थ्य रखते हैं, एक जैसे विचारो वाले देशों का, किसी मुद्दे विशेष पर, गठबंधन तैयार करने की क्षमता उनके पास है, तथा वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में, लोकतान्त्रिक और समता के आधार पर, सुधार लाना चाहते हैं। विभिन्न प्रकार से मध्य शक्ति देश भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों में व्यस्त हैं। मध्य शक्ति के प्रारूप को 'कनाडा में निर्मित' (made in Canada) ढाँचा कहा जाता है। कनाडा के उदार अन्तर्राष्ट्रवादी मध्य शक्ति कहा जाता है। उसको कुछ क्षेत्रों में अपेक्षाकृत लाभ की स्थिति प्राप्त है। यह हैं अन्तर्राष्ट्रीय शांति-निर्वहण संक्रिया (peacekeeping operations), मध्यस्थता, तथा शांत राजनय (quiet diplomacy)। हाल के वर्षों में उसने जिन क्षेत्रों में अपने कौशल का सफलतापूर्वक उपयोग किया है वे हैं: कर्मचारियों के विरुद्ध बिछाई गई भूमिगत सुरंगों का निषेध करने वाली संधि, तथा अन्तर्राष्ट्रीय फौजदारी न्यायालय (International Criminal Court) की स्थापना।

ऑस्ट्रेलिया एक अन्य देश है जो स्वयं को उदार अन्तर्राष्ट्रवादी मानता है। इसकी अर्थव्यवस्था तथा सैनिक क्षमता के मध्यम आकार की पृष्ठभूमि में, इस मध्य-शक्ति देश ने 1970 के दशक से बहुपक्षीय उपागम को विकसित कर उसको व्यावहारिक रूप दिया, ताकि राजनीतिक सुरक्षा तथा आर्थिक सहयोग के विषयों पर, एशिया प्रशांत क्षेत्र में, उसने आम सहमति बनाने में सक्रिय भूमिका निभाई। ऑस्ट्रेलिया ने एशिया प्रशांत आर्थिक सहयोग नामक क्षेत्रीय संगठन की स्थापना में जो पहल करके भूमिका निभाई, तथा उसकी 1990 के दशक में अपनाई गई एशिया के साथ सहयोग की नीति, इस बात के उदाहरण हैं कि ऑस्ट्रेलिया ने इस क्षेत्र में रणनीतिक समुदाय स्थापित करने के प्रयास किए। ऑस्ट्रेलिया तथा कनाडा दो ऐसी प्रमुख अर्थव्यवस्थाएँ हैं जो निर्यात आधारित संसाधन कहलाती हैं। वे कृषि उत्पाद निर्यात करने वाले देशों के समूह (Cairns Groups) की स्थापना में प्रमुख भूमिका निभाने वाले थे। यह समूह विकसित एवं विकासशील दोनों प्रकार की उन अर्थव्यवस्थाओं का समूह है जो कि संयुक्त राज्य अमेरिका एवं यूरोपीय संघ की संरक्षात्मक नीतियों तथा सहायता के प्रतिरूप से प्रभावित हुए। अतः यह भेदभाव-रहित कृषि व्यापार के लिए कार्यरत् हैं।

आवश्यक नहीं है कि मध्य-शक्तियाँ ही क्षेत्रीय शक्तियाँ हों। परन्तु जब वे क्षेत्रीय शक्तियाँ हों, जैसे कि भारत, ब्राज़ील तथा दक्षिण अफ्रीका, तब यह देश अपने-अपने क्षेत्रों में काफी प्रभाव रखते हैं। सभी लैटिन अमरीकी देशों में से, ब्राज़ील ही ऐसा है किसकी राष्ट्रीय सामर्थ्य उसे क्षेत्रीय शक्ति की श्रेणी में रखती हैं यह 1990 के दशक में एक उभरता बाज़ार बन गया, जैसे कि 1970 के दशक में यह नव-औद्योगीकृत होता देश (Newly Industrialising Country), या विकसित औद्योगीकरण अपनाता देश (advanced industrialising country) था। इसका प्रमुख लक्ष्य आर्थिक विकास प्रक्रिया है, जिसने इसे क्षेत्रीय शक्ति के रूप में उभारा, तथा जोकि पड़ोस के देशों में आर्थिक सहयोग सुनिश्चित करने में व्यस्त हैं। यह दक्षिण के सांझे बाज़ार के द्वारा आर्थिक सहयोग सुनिश्चित करने का प्रयास कर रहा है। साथ ही इसने आम सहमति पर आधारित राजनीतिक स्थिति अपनाई है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उसने ऐसी विदेश नीति अपनाई है जिसे हित-आधारित तटस्थतावाद कह सकते हैं। साथ ही अपने आर्थिक और व्यापारिक हितों को प्रोत्साहित करता रहता है।

विकासशील मध्य-शक्ति देश भारत ने 1950 और 1960 के दशकों में गुट-निरपेक्ष आन्दोलन का नेतृत्व प्रदान करके अपने कौशल का परिचय दिया। यह एक बहुपक्षीय मध्य शक्ति है, जिसको शांति निर्वहण तथा मध्यस्थता की कूटनीति में अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक स्थिति प्राप्त है। दक्षिण एशिया तथा उससे परे भी भारत एक जटिल रणनीतिक परिदृश्य का भागीदार है। इसी कारण भारत ने अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनने का निर्णय किया। भारत 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध से, लगभग सभी प्रमुख शक्तिशाली देशों, तथा उभरती शक्तियों के साथ जटिल रणनीतिक वार्ताएँ कर रहा है। इसकी कूटनीति सभ्य एवं सुसंस्कृत है, तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में इसकी विश्वसनीयता भारत को एक जैसे विचारों वाले देशों के गठबंधन का स्वाभाविक नेता बनाती है। उधर, आकार, आर्थिक सम्पन्नता तथा भू-रणनीतिक स्थिति के आधार पर दक्षिण अफ्रीका को मध्य शक्ति का दर्जा देना ही होगा। अफ्रीकी महाद्वीप के गठबंधन के प्रतिमान को, जो मुद्दों पर आधारित है, दक्षिण अफ्रीका द्वारा नेतृत्त्व प्रदान करने की योग्यता, इस बात पर निर्भर करती है कि उस देश के पास बहुजातीय, बहुसांस्कृतिक लोकतान्त्रिक समाज बनने की योग्यता है, अथवा नहीं।

शीत युद्ध के काल में जापान की राजनीतिक भूमिका का उस देश की आर्थिक शक्ति के साथ मेल नहीं हो पाया। यद्यपि विश्व के सबसे अधिक ऋण तथा सहायता देने वाले देश के रूप में, जापान के पास अपार शक्ति है, फिर भी उसने इस बात को ज़ोर देकर नहीं कहा कि वह कार्यसूची के आधार पर नेतृत्व प्रदान कर सकता है। इसकी प्राथमिकता मुख्य रूप से जोखिम और ख़तरों से बचने की रही है। कुछ अन्य कुशल मध्य शक्तियों के द्वारा प्रदशित सक्रियता के विपरीत, जापान की राजनयिक कार्यप्रणाली अत्यंत सचेत तथा स्वभाव से अन्य देशों की नीतियों और कार्यों पर प्रतिक्रिया देने की (reactive) रही है - अपनी ओर से सक्रिय (proactive) होने की नहीं। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की अपेक्षाओं तथा 1998 के एशियाई वित्तीय संकट के परिवेश में, जापान की आर्थिक सामर्थ्य में कमी हुई। अतः अब वह अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के हित में पहले से अधिक उत्तरदायित्व संभालने के लिए तत्पर है। अन्य उभरती शक्तियों द्वारा प्रयुक्त कौशल को जापान अब सीखने का प्रयास कर रहा है। अन्य देशों के विपरीत, न तो चीन ने स्वयं को मध्य शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया, और न ही पाश्चात्य देशों ने उसे मध्य शक्ति का दर्जा दिया। पाश्चात्य धारणा यह रही है कि चीन में एक महान शक्ति के रूप में

उभरने की क्षमता है। एक बार चीन पूरी तरह विकसित हो जाए तो यह उभरता आर्थिक उत्पादन केन्द्र (economic power house) इस योग्य है कि वह विशाल एशिया-प्रशांत क्षेत्र को राजनीतिक रूप से प्रभावित कर सके। यह एशिया प्रशांत क्षेत्र को एक नया मोड़ दे सकता है।

11.7 सारांश

आकार और स्थिति, भूगोल तथा मानकों के पारम्परिक उपागम, मध्य शक्तियों के विदेश नीति संचालन को पूरी तरह समझाने में सक्षम नहीं हैं। यह देश ही समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों में उभरती शक्तियों के रूप में देखे जा रहे हैं।

मध्य शक्ति देश सदा एक ही जैसा व्यवहार नहीं करते हैं। परन्तु, यह निश्चित है कि वे सभी बहुपक्षधर (multilateralist) हैं। उन्हें कुछ क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक स्थिति प्राप्त है। वहाँ वे अपनी विशेष योग्यता तथा अपने कौशल के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था पर अपना महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में उनकी उपस्थिति से वे इस सिद्धान्त पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं कि शक्ति ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों का एकमात्र आधार है। वे अपनी सक्रियता के द्वारा व्यवस्था को अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी और नैतिक मानकों से सम्बद्ध रख सकते हैं।

शीत युद्ध का मध्य शक्तियों पर सतर्क रहने का प्रभाव पड़ा। शीत युद्धोत्तर युग में तथा आर्थिक भूमंडलीकरण के समय में अधिकतर मध्य शक्तियों को उभरती शक्तियाँ कहा जा रहा है। मध्य-शक्ति की अवधारणा में ही परिवर्तन हुआ है; या कह सकते हैं कि उसकी पुनर्स्थापना हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन, तथा विचार के लिए कार्यसूची में नए विषयों का शामिल होने से, मध्य शक्तियाँ न केवल नई भूमिका अपना रही हैं, परन्तु उनका सम्पादन भी वे अलग और नए तरीकों से कर रही हैं। वे नेतृत्व की रिक्तता को भर रहीं हैं, तथा वे ऐसा नेतृत्त्व भी प्रदान कर रही हैं जो कि तकनीकी और उद्यमी है। यह शक्ति-आधारित नहीं है। उनकी सक्रियता से पारस्परिक-निर्भरता की स्थिति सुदृढ़ हुई है। ऐसा उभरती बहुध्रुवीय लोकतान्त्रिक विश्व व्यवस्था के संदर्भ में हुआ है, तथा हो रहा है।

11.8 अभ्यास प्रश्न

1) मध्य शक्तियों को समझने के लिए प्रयुक्त प्रमुख उपागमों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

2) मध्य-शक्ति कूटनीति (राजनय) के प्रमुख व्यवहारवादी पक्षों की पहचान कीजिए।

3) "श्रेष्ठ अन्तर्राष्ट्रीय नागरिकता" तथा बहुपक्षवाद की समीक्षा कीजिए।